भारतीय खेती इंटरनेशनल प्राइवेट कंपनी लिमिटेड

सचिन कुमार जैन

जिस वक्त पूरा देश क्रिकेट विश्वकप के सेमीफाईनल और फाइनल मैचों की खुमारी में गिर–गिर पड़ रहा था, देश के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, नेता, मंत्री, अफसरान भी उसके नशे से सराबोर थे, मीडिया में (जिसे अब जन विरोधी और दृष्टिहीन मान लेना चाहिये) क्रिकेट का नशा बिखरा हुआ था; ठीक उन्हीं चार दिनों के दौरान भारत की सरकार ने *समग्र प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति– सर्कुलर 1–2011* जारी की। जिसमें कृषि के क्षेत्र को लगभग पूरी तरह से 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिये खोल दिया गया। अब कोई भी विदेशी कम्पनी बीज, पौधों, फूलों, हार्टीकल्चर, फ्लोरीकल्चर, सब्जियों, चाय और मशरूम आदि के उत्पादन और विकास में सीधे दखल दे सकती है। पशुपालन, मछलीपालन भी अब इसमें शामिल है। सरकार उन्हें आयात–निर्यात शुल्कों और अन्य करो में रियायत भी देगी।

वे भारत की बची–खुची कृषि संपदा (बीज और उत्पादन तकनीकों) के साथ पूरा खिलवाड़ कर सकेंगे। इस नीति के बिना ही सवा दो लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं। अब यह दर बढ़ जायेगी क्योंकि अब नारियल, चाय, मशरूम, फल, फूल पैदा करने वालों के साथ–साथ पशुपालन और मछलीपालन करने वाले लोगों को उन बड़ी–बड़ी कंपनियों के साथ प्रतिस्पर्धा करना होगी। जिनके पास आर्थिक संसाधन तो हैं ही, सरकार का नीतिगत संरक्षण भी है। भारत में किसानों और उत्पादों को लगभग प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहे हैं। यहां चार दशकों से कृषि उपज मण्डी की व्यवस्था काम करती रही है पर पिछले 10 वर्षों में भारत में आईटीसी और कारगिल सरीखी कम्पनियों ने मण्डियों के समानान्तर अपनी व्यवस्था खड़ी कर दी गई है और वे भारी मात्रा में किसानों से सीधी खरीदी कर रही हैं। मोंटेक सिंह अहलूवालिया सरीखे अर्थशास्त्री मानते हैं कि इससे किसानों को बेहतर व्यवस्था और बेहतर दाम मिल रहे हैं। ये वे विचारक हैं जो यह मानते हैं कि यदि सरकारी ढांचा ठीक से काम न करे तो उसमें समानान्तर निजी ढांचा खड़ा कर दो। पर सरकारी ढांचा ठीक मत करो।

मध्यप्रदेश के रायसेन जिले में 4 अप्रैल को एक किसान की कृषि उपज मण्डी में मृत्यु हो गई। वह 8 दिन से अपनी फसल बिकने का इंतजार कर रहा था पर बारदाना (बोरे) नहीं होने के कारण अनाज नहीं बिका और तनाव इतना बढ़ा कि उसकी जान चली गई। आज मण्डी में कृषि उत्पाद बेचने के बाद किसानों को 8 से 10 दिन तक भुगतान नहीं होता है इसलिये वे दूसरा विकल्प खोजते हैं, सवाल यह

है कि क्या उनके लिये प्रभावी भुगतान की व्यवस्था खड़ी नहीं की जा सकती है। मण्डी में उत्पाद बेचने के लिए मण्डी अब किसानों से 6 तरह के दस्तावेज मांगे जा रहे हैं इससे उनका मन उचट रहा है, सवाल यह है कि क्या व्यवस्था को जटिल बनाना जरूरी है ? ऐसे ही कारणों से मण्डी व्यवस्था को कमजोर किया गया है और निजी कम्पनियों के लिये माहौल बनाया गया है। आज मध्यप्रदेश में तीन कम्पनियों ने 30 प्रतिशत बाजार पर कब्जा जमा लिया है और अब सरकार धीरे-धीरे मण्डी व्यवस्था को खत्म करने की दिशा में बढ़ रही है। आज आईटीसी या कारगिल किसानों को थोड़ा सम्मान इसलिये देती है क्योंकि उन्हें पता है कि किसानों के पास कृषि उपज मण्डी का विकल्प मौजूद है। जैसे ही यह विकल्प खत्म होगा या अप्रभावी होगा; वैसे ही इन कम्पनियों के काटने वाले दांत नजर आना शुरू हो जायेंगे।

हमारा विश्लेषण यह बताता है कि खेती की व्यवस्था के हर हिस्से (संसाधनों और उत्पादन तंत्र,, मार्केटिंग और आपूर्ति, व्यवहार और उपभोग के तौर-तरीकों पर नियंत्रण) में अब कम्पनियों का दखल हो चुका है। अब तक वे प्रसंस्करण या डिब्बा बंद सामग्री बनाने में शामिल थे पर अब कच्चे माल के उत्पादन पर उनका नियंत्रण है जिससे न तो किसान यह तय कर पा रहा है कि उसे क्या पैदा करना है न ही उसे यह स्पष्ट हो रहा है कि सरकार उसे क्या संरक्षण देगी!! यह जानना उल्लेखनीय है कि कारफोर, वालमार्ट, रिलायंस, भारती, फ्यूचर वेल्यू रिटेल, स्पाट हायपर मार्केट्स जैसे समूह 510 सुपर मार्केट और माल्स की श्रृंखला खड़ी करने वाले हैं। दिल्ली बेंगलूर, कलकत्ता, मुम्बई आदि में रहने के लिये कुछ वर्गमीटर जमीन नहीं मिल पा रही है परन्तु नाईट फ्रेंक इण्डिया की रिपोर्ट ***इण्डिया आर्गनाइज्स रीटेल मार्केट 2010*** के मुताबिक मुम्बई में 2010 से 2012 के दौरान 5.5 करोड़ वर्गफिट स्थान फुटकर व्यापार के लिये कम्पनियों के लिये उपलब्ध होगा; कहां से आयेगी यह जगह? जी हां, झुग्गियों और फुटपाथ पर काम करने वालों को विस्थापित करके।

हम यह मानते रहे हैं कि जैविक खेती और इसके उत्पाद सीधे खेत और किसानों से हमारी रसोई में आयेंगे परन्तु अब यह सच नहीं है। जैसे-जैसे यह तर्क स्थापित हुआ है कि हमें यानी उपभोक्ता को साफ और रसायनमुक्त भोजन चाहिये; वैसे-वैसे देश और दुनिया में बड़ी और भीमकाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने जैविक खेती और जैविक उत्पादों के व्यापार को अपने कब्जे में लेना शुरू कर दिया। भारत में पारम्परिक रूप से जैविक उत्पाद सामान्यतः सीधे खेतों से लोगों तक पहुंचे हैं। हमारे यहां हाईब्रिड और देशी टमाटर या लोकल लौकी जैसे शब्दों के साथ ये उत्पाद बाजार में आते रहे हैं पर अब बड़ी कम्पनियों ने इस संभावित बाजार पर अपना नियंत्रण जमाना शुरू कर दिया है। तर्क यह

दिया जा रहा है कि जितने बड़े पैमाने पर आधुनिक खेती में रसायनों का उपयोग किया जा रहा है; उसके खतरे को देखते हुये यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है कि उसका मालिकाना हक किसके पास है। पर इसके दूसरी तरफ हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि आज की सबसे बड़ी जरूरत यह तय करने की है कि अनाज, खाद्यान्न और भोजन के उत्पादन का तंत्र और व्यवस्था विकेन्द्रीकृत, जनोन्मुखी और पारदर्शी ही होना चाहिये। ठण्डे पेयों में कीटनाशकों की खतरनाक स्तर तक मौजूदगी, फिर डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों में अमान्य रसायनों का उपयोग और खेतों में एण्डोसल्फान के छिड़काव के मामलों में बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका ने यह सिद्ध किया है कि उनके उत्पादों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

ये महाकाय आर्थिक रूप से सम्पन्न कम्पनियां भी जानती है कि जैविक उत्पादों का बाजार अब तेजी से बढ़ रहा है। रणनीतिक रूप से इन कम्पनियों ने वर्ष 1997 से 2007 के बीच दुनिया भर में 363 छोटी और स्थानीय उत्पादक इकाइयों का अधिग्रहण किया। इनमें से ज्यादातर ने अधिग्रहण के बाद भी उन स्थानीय ब्राण्डों के नाम से ही व्यापार किया ताकि उनकी बदनामी का असर इस नये व्यापार पर न पड़े। कोकाकोला ने आनेस्ट–टी का अधिग्रहण किया। मुईर ग्लेन और कास्केडियन फार्म को स्माल पेनेट फूड्स के नाम से चलाया जा रहा है जो वास्तव में जनरल मिल्स की कम्पनी हैं आनेस्ट टी पर कोकाकोला के नियंत्रण की बात जब लोगों को पता चली तो उसकी दुनिया भर में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। सच यह है कि आज बाजार में अनाज और भोजन से लाभ कमाने के लिये उसे किसी भी स्तर तक जहरीला बना देने को तत्पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर आम समाज विश्वास नहीं करता है। वह यह नहीं मान पाता है कि ये कम्पनियाँ वास्तव में सच्चे जैविक उत्पाद उन्हें उपलब्ध करवायेंगे। आर्गेनिक ट्रेड एसोशिएशन ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि वर्ष 2009 में ही जैविक उत्पादों का बड़ा बाजार 24.8 बिलियन डॉलर का हो चुका था। यानी जितनी ज्यादा संभावना उतना बड़ा भोजन पर आर्थिक उपनिवेशवादी खतरा।

हम बुनियादी रूप से यह मानते हैं कि भारत में चूंकि 67 प्रतिशत जनसंख्या खेती पर निर्भर है और अब बड़े पैमाने पर किसान भी खेती के स्थाई विकास के लिये रासायनिक खेती को छोड़कर जैविक खेती को अपना रहा है; ऐसी स्थिति में इस क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दखल को खत्म करने की जरूरत है। आंध्रप्रदेश के 23 जिलों के किसान जैविक खेती कर रहे हैं पर अब तक देश में इसकी कोई ऐसी नीति नहीं है जो किसानों को बड़े दानवों से सुरक्षित करने की व्यवस्था देती हो। दूसरा बिंदु यह महत्वपूर्ण है कि जैविक खेती के लिये उत्पादन के एक पूरे तंत्र की जरूरत होती है। जिसमें विविध

किस्मों के अनाज का उत्पादन, पशुधन का संरक्षण, स्थानीय उर्वरकों और कीटनाशकों का उत्पादन शामिल है। इस बात में शक है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां इस तरह की व्यवस्था को खड़ा करने में कोई रूचि दिखायेंगी। और पूरी आशंका है कि इसके बजाये वे जैव संशोधित बीजों का उपयोग करेंगी और किसी न किसी रूप में रसायनों का उपयोग करती रहेंगी। यानी जैविक खेती को नये खतरों का सामना करना पड़ेगा।

खाद्य सुरक्षा की व्यवस्था में जितना उत्पादन का तंत्र महत्वपूर्ण है; उतना ही महत्वपूर्ण है बाजार का तंत्र। भारत में 2.9 करोड़ लोग भोजन और भोजन से सम्बन्धित सामग्री का व्यापार करते हैं। वे केवल लाभ के लिये व्यापार नहीं करते हैं बल्कि खाद्य सुरक्षा की परिभाषा के महत्वपूर्ण हिस्से ''पहुंच'' को सुनिश्चित करने में उनकी केन्द्रीय भूमिका रही है। अब इस ''बाजार'' पर प्रमुख भोजन व्यापार कम्पनियां अपना मिला–जुला एकाधिकार चाहती है। वालमार्ट, रिलायंस, भारती, ग्लेक्सो स्मिथ कंज्यूमर हेल्थ केयर, नेस्ले, केविनकरे, फील्ड फ्रेश फूड, डेलमोंटे, बुहलर इंडिया, पेप्सीको, और कोका कोला शामिल है। बाजार विश्लेषण करने वाली एक कम्पनी आर.एन.सी.ओ.एस. की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक भोजन का बाजार भारत में 7.5 प्रतिशत की दर से हर साल बढ़ रहा है और वर्ष 2013 में यह 330 बिलियन डालर के बराबर होगा। एपीडा (एग्रीकल्चयरल एण्ड प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स एक्सपोर्ट डेवलमेन्ट कार्पोरेशन अथारिटी) के मुताबिक वर्ष 2014 में भारत से 22 बिलियन डालर के कृषि उत्पाद निर्यात हो सकते हैं जबकि वर्ष 2009–10 में फूलों, फलों, सब्जियों, पशु उत्पाद प्रोसेस्ड फूड और बारीक अनाज का निर्यात 7347.07 मिलियन डालर के बराबर हुआ। अब सरकार खाद्य प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग) के जरिये दूसरी हरित क्रांति लाने की प्रक्रिया में है; जिस पर डेढ़ लाख करोड़ रूपये खर्च किये जायेंगे। इस हरित क्रांति के केन्द्र में खेत और किसान नहीं बल्कि प्राकृतिक संसाधनों, उत्पादन तंत्र पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को नियंत्रण सौंपना है।

भारत के खाद्य प्रसंस्करण मंत्री सुबोधकांत सहाय के मुताबिक भारत सरकार इसमें अगले 5 साल में 21.9 बिलियन डॉलर का निवेश करेगी। इस निवेश का मकसद होगा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और वित्तीय संस्थानों के लिये अनुकूल माहौल तैयार करना। बाजार के विश्लेषकों का मनना है कि खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र का हिस्सा 6 प्रतिशत से 20 प्रतिशत होने की पूरी संभावनायें हैं और दुनिया के प्रसंस्करण खाद्यान्न बाजार में भारत की हिस्सेदारी 1.5 प्रतिशत से बढ़कर 3 प्रतिशत हो जायेगी। जहां तक इसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मसला है; यह बढ़कर 264.4 मिलियन डालर का हो गया है। केवल 8 कम्पनियां (केविनकरे, नेस्ले, ग्लेक्सो, यम! रेस्टोरण्ट्स इंडिया, फील फ्रेश फूड, बहलर इण्डिया,

पेप्सी और कोकोकोला) ही अगले दो सालों में 1200 मिलियन डालर का निवेश खाने-पीने का सामान बनाने वाले उद्योग में करने वाली हैं। इन्हें तमाम रियायतों के साथ ही पहले 5 वर्षों तक उनके पूरे फायदे पर 100 फीसदी आयकर में छूट और फिर अगले पांच वर्षों तक 25 फीसदी छूट मिलेगी। एक्साइज ड्यूटी आधी कर दी गई है यानी सरकार के बजट से उनका फायदा तय किया गया है; पर किसान के लिये सारी छूटें खत्म है।

ये कुछ बड़े-बड़े आंकड़े है; कुल मिलाकर बमनुमा; जो आप पर गिरा दिये गये हैं। परन्तु इन आंकड़ों में ही विध्वंस भी छिपा हुआ है। पिछले 20 वर्षों में भारत के योजना आयोग और आर्थिक सलाहकारों ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के एजेण्ट की भूमिका निभाकर यह तय कर लिया है कि हमें कृषि का ऐसा औद्योगिकीकरण करना है जो कम्पनियों के हाथ में हो। इसलिये वर्ष 2005 में उन्होंने कम्पनियों को किसानों से सीधे अनाज खरीदने की अनुमति दे दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि अपनी ही जरूरतें पूरी करने के लिए भारत सरकार को दो गुना दामों पर 53 लाख टन अनाज आस्ट्रेलिया, कनाडा और यूक्रेन से अनाज खरीदना पड़ा। पिछले 4 वर्षों में अनाज की खुले बाजार में कीमतें 70 से 120 प्रतिशत तक बढ़ीं पर सरकार ने किसानों के लिये न्यूनतम समर्थन मूल्य में महज 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की। यह जानते हुऐ कि बढ़ी हुई कीमतों का फायदा दलाल और ट्रेडर उठा रहे हैं उन्हें नियंत्रित करने के लिये कोई नीति नहीं बनाई गई। सरकार को अनाज की कम खरीद करना पड़े इसलिये गरीबी की रेखा को छोटा किया गया ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का दायरा और छोटा हो जाये। यह इसलिये भी किया गया ताकि कम्पनियों को किसानों से मनमानी कीमत पर अनाज खरीदने का मौका मिल सके। इस अनाज का उपयोग निर्यात करने में किया जा रहा है और प्रसंस्करण के लिये भी। गेहूं से रोटी नहीं बल्कि डबलरोटी, नूडल्स, बिस्किट और डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ बनाने के लिये उपयोग किया जाना प्राथमिक बना दिया गया है। लगभग 10 लाख हेक्टेयर सबसे उपजाऊ जमीन पर फूल और ऐसे फल उगाये जा रहे हैं; जिनसे रस, शराब और विलासिता के पेय बनते हैं।

मध्यप्रदेश में तीन कम्पनियाँ अघोषित रूप से अनुबंध की खेती करके चिप्स के लिये आलू की और चटनी के लिये टमाटर-हरीमिर्च की खेती करवा रही हैं। इससे खेती की विविधता खत्म हुई है। झाबुआ में तो इसे ऐसे प्रोत्साहित किया गया कि वहां टमाटर के लिये एक एकड़ खेत में 600 से 800 किलो रासायनिक ऊर्वरकों का उपयोग होने लगा और अब मिट्टी की उर्वरता लगभग पूरी तरह से खत्म हो चुकी है। सबसिडी कम करने की नीति के तहत अब यूरिया, डीएपी पर दी जाने वाली रियायत भी खत्म हो चुकी है, डीजल के दाम बढते रहे हैं और बिजली की कीमतें पिछले पांच वर्षों में

190 फीसदी बढ़ाई जा चुकी है। इससे गेहूं की उत्पादन की लागत अब लगभग 1650 रूपये पर पहुंच गई है परन्तु भारत सरकार ने इस वर्ष न्यूनतम समर्थन मूल्य तय किया है 1120 रूपये। किसान के लिये दालों का समर्थन मूल्य है 32 रूपये पर बाजार में दालों की कीमत है 60 से 90 रूपये। क्या सरकार खुद किसानों की आत्महत्या का कारण नहीं है!!

हमारी सरकार जीडीपी यानी सकल घरेलु उत्पाद में 8 और 9 और 10 प्रतिशत की वृद्धि की तान पर अपना राग अलापते रहते हैं। उनके आलाप का आनंद यह है कि यह वृद्धि हासिल करना बहुत आसान और बहुत खतरनाक एक साथ है। बहुत आसान इसलिए कि जो कुछ भी खरीदा और बेचा जाता है उसमे धन का लेन–देन होता हैए सरकार के खजाने में भी पैसा आता है और माना जाता है कि लोगों की भी उन्नति हुई। जिससे पैसा नहीं आता है वह जीडीपी के लिए बेकार है। बात को थोड़ा और साफ़ करते हैं। जंगलए जमीनए पानीए खनिज पदार्थ, पहाड़ यह सब कुछ हमारे संसाधन हैं। जब तक जंगल बचा हुआ है, जीडीपी नहीं बढ्ती है, जब उसे सरकार या कंपनी काट्ती है, तब धन आता है। जब पानी कल–कल करके बहता रहता है, उसका सरकार के लिए कोई मूल्य नहीं है, पर जब क़ानून बना कर उसके उपयोग पर लोगों का हक सीमित कर दिया जाता है तो संकट बढ़ता है। और फिर उस पर कंपनी को कब्ज़ा देकर भारी कीमत वसूली जाने लगती है तो जीडीपी बढ्ती है। यदि लोग स्वस्थ रहते हैं, तो मोंटेक और मनमोहन सिंह वाला विकास नहीं होता है, जब लोग बीमार पड़ते तब जी.डी.पी बढ्ती है। अब यदि ये वैसा वाला विकास चाहते हैं और उसके लिए काम कर रहे हैं, तो इसका मतलब है कि न तो जंगल बचेगा, न नदी और पहाड़, न खनिज, न जमीन और न स्वास्थ्य। पिछ्ले 10 वर्षों में सरकार ने 10 लाख हेक्टयर जमीन बेंची है, अपनी यानी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों में बहुत सी हिस्सेदारी बेचीं है, रेलवे ने अपनी जमीनें बेंची हैं, जो जंगल समुदाय की पारंपरिक संपत्ति है, उसके पेड़ और उसका खनिज बेचा है, कोयले, बाक्साईट, लोहा पत्थर और संगमरमर के लिए जमीनों के खनन की अनुमति दी है जिससे लाखों हेक्टयर जमीन लम्बे समय के लिए बेकार हो गई। तपेदिक और सिलिकोसिस जैसे बीमारी वहाँ पनपी और हज़ारों की जान लील ली। तब कहीं जाकर हमें 9 प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल हो पायी है। इसी दौरान खेती में यह दर नकारात्मक हो गई, जिसमे सरकार को कोई समस्या नज़र नहीं आती। वह तो कह ही रहे हैं, लोगों को गाँव और खेती से बाहर निकालकर इस क्षेत्र के योगदान को छः प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा है और खेती से जितना योगदान होने भी वाला है, उसमे बड़ी–बड़ी कम्पनियों को आने के लिए दरवाज़े खोल दिए गए हैं। और सरकार मानती है कि इससे खेती और किसानों की हालात सुधर जायेंगे। खेती

को जो नुक्सान नीतिगत और सुनियोजित तरीके से पहुंचाया गया है वह बहुत दूर तक अपने प्रभाव दिखाएगा। जरा इन जानकारियों पर नजर डालें –

1. चेन्नई की कम्पनी केविनकरे 109.50 मिलियन डालर का निवेश शीतलपेय और नमकीन निर्माण के लिए कर रही है।
2. नेस्ले शोध और विकास (खाद्य सामग्री) के लिए मानेसर में 50.49 मिलियन डालर का निवेश कर रही है।
3. दूध के उत्पादों के निर्माण के लिए ग्लेक्सो स्मिथ क्लिन 64.87 मिलियन डालर का निवेश कर रही है। उल्लेखनीय है कि यही कम्पनी हार्लिक्स बनाती है।
4. यम! रेस्तारेंट्स इंडिया (जो पिज्जाहट, केऍफ़सी, टेकोबेल जैसे रेस्तारेंटस की श्रंखला चलाती है), वह 100 मिलियन डालर का निवेश करके 2015 तक 1000 रेस्तारेंट्स चालू करने वाली है।
5. डेल मोंटे और भारती इंटरप्राइसेस के साथ मिलकर फील्ड फ्रेश फूड भी शोध और विकास के लिए होसुर, तमिलनाडु में 25.93 मिलियन डालर का निवेश कर रहे हैं।
6. खेती के उपकरणों वाली कम्पनी बुह्लेर इंडिया 22.55 मिलियन डालर की लगत से एक निर्माण इकाई लगा रही है, जिसका टर्न ओवर 2014 में 225.49 मिलियन डालर होगा। इतना भयंकर लाभ कहाँ से और किनसे कमाया जाने वाला है!
7. पेप्सी अगले दो सालों में खाने–पीने के व्यापार पर 500 मिलियन डालर का निवेश करने वाली है।
8. जबकि कोका कोला कर्नाट्क में 120.75 मिलियन डालर की लागत से एक बाटलिंग इकाई लगा रही है।

कृषि व्यवस्था में कारपोरेट निवेश के ये केवल 8 उदाहरण हैं जो 971.54 मिलियन डालर यानी 45.72 अरब रुपए का निवेश अगले दो सालों में करने वाले हैं। यह निवेश किसानोंए फुटकर व्यापारियों और गाँव की अर्थव्यवस्था के और गहरा नुकसान पंहुचाने का काम करेगा और अगर सरकार की बात की जाए तो सुनिए। सरकार इन कंपनियों को मदद करने के लिए अनुबंध की खेती को बढ़ावा देने और इस क्षेत्र (खाद्य प्रसंस्करण) को करमुक्त क्षेत्र बना चुकी है। सरकार की 30 बड़े फूड पार्क बनाने की योजना है, ये एक तरह के विशेष खाद्य प्रक्षेत्र होंगे। अब हमारे देश की जीडीपी और बढने वाली है!

जो कंपनिया खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में निवेश कर रही हैं, उन्हें शुरू के 5 सालों तक आयकर 100 प्रतिशत और फिर अगले 5 सालों तक 25 प्रतिशत छूट का प्रावधान किया जा चुका है। डिब्बाबंद खाने के सामान पर एक्साईस ड्यूटी 16 प्रतिशत से घटाकर 8 प्रतिशत कर दी गयी है। अर्नेस्ट एंड यंग की रिपोर्ट *फ्लेवर्स ऑफ इनक्रेडिबल इंडिया* के मुताबिक़ भारत में खाने का बाज़ार 2015 में 181 बिलियन डालर और वर्ष 2020 में 318 बिलियन डालर होगा, जिसका ज्यादातर हिस्सा संगठित क्षेत्र

यानी बड़ी कंपनियों के नियंत्रण में होगा। जरा यह भी जानें कि पिछले 15 वर्षों में भारत के शहरों–गाँव में नमकीन बनाने वाली 13 हज़ार छोटी इकाइयां बंद हो चुकी हैं।

1990 के दशक में जब आर्थिक उदारीकरण की नीतियां लागू की गई थी तब खेती के लिये लगभग 220 हजार करोड़ रूपये की सरकारी रियायत होती थी। पिछले 20 वर्षो का बदलाव यह है कि वर्ष 2011 में भारत सरकार ने किसानों के लिये सबसिडी 100 हजार करोड़ रूपये से कम कर दी और इस वर्ष किसानों के लिए 375 हजार करोड़ रूपये कर्ज देने का प्रावधान किया है। सरकार यह मानने के लिये तैयार नहीं है कि किसानों के लिये कृषि सबसिडी उपभोक्ताओं के लिये भी जरूरी है। इसी से किसानों को खेती करने का प्रोत्साहन मिलेगा, उत्पादन की लागत कम रहेगी और उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर मूलभूत जरूरतों के कृषि उत्पाद मिल सकेंगे। इसका असर हम साफ देख सकते हैं, खेती की लागत बढ़ाना, किसानों पर कर्ज बढ़ाना और अब बेकाबू मंहगाई – उत्पादन करने वाला आत्महत्या कर रहा है और उपभोक्ता भुखमरी का शिकार है। ऐसे में हमारे वाणिज्यिक मंत्री कमलनाथ ने कहा कि अनाज कम इसलिये पड़ रहा है क्योंकि भारत के लोग ज्यादा खाने लगे हैं, कृषि मंत्री (जिनकी रूचि अपने काम से ज्यादा क्रिकेट के खेल में है) शरद पवार ने कहा मंहगाई कम करना हमारी जिम्मेदारी नहीं है, वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी कहते हैं कि मंहगाई कम करना हमारे हाथ में नहीं है और प्रधानमंत्री ने कहा कि सर्वोच्च न्यायालय हमें सरकारी गोदामों में भरे करोड़ों टन अनाज को गरीबों में बांटने को न कहे, यह एक नीतिगत मसला है (दूसरे शब्दों में इससे व्यापार कर रही कम्पनियों को नुकसान होगा और सरकार यह नहीं चाहती है)।

इन बाजारों से फुटकर बाजार को संचालित करने वालों के सामने जीवन का संकट खड़ा हो गया है क्योंकि अब सब कुछ वहीं मिलता है वह भी डिब्बा बंद या तथाकथित गुणवत्ता के साथ। इस व्यवस्था के जरिये बड़े समूह अब यह तय करने लगे हैं कि उपभोक्ता क्या खायेंगे और क्या पियेंगे। इस सुनियोजित व्यापारी षडयंत्र से किसान और समाज दोनों को लाचारी महसूस हो रही है। किसानों पर इसका असर दिखने लगा है इसलिए 48 प्रतिशत किसान यह कहते हैं कि दूसरा विकल्प मिलने पर फौरन खेती छोड़ देंगे क्योंकि अब न तो वे कमा पा रहे हैं न ही भविष्य में संभावनायें देख पा रहे हैं और सरकार भी दुश्मन सी ही लगती है। आखिर में सिर्फ इतनी सी बात कहना चाहता हूं कि सरकार की नीति, किसानों की आत्महत्या और 76 फीसदी लोगों के भूखे रहने की स्थिति के बीच बिल्कुल सीधे संबंध हैं।